"बूंदों की संस्कृति" से साभार

हिमाचल प्रदेशः पहाड़ी नदियों का दोहन

सी. गोपीनाथ, सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरोनमेंट

पिघली बर्फ से पानी पाने वाली नदियां हिमाचल प्रदेश को सदानीरा जल स्रोत उपलब्ध कराती हैं। निचली पहाड़ियों में कुछ मौसमी बहाव वाली बरसाती पानी वाली नदियां भी हैं। काफी जल स्रोतों के बावजूद पहाड़ी पृष्ठभूमि सिंचाई सुविधाएं विकसित करने में परेशानियां खड़ी करती है। ऐतिहासिक रूप से स्थानीय राजाओं, प्रधानों और ग्राम समुदायों ने यहां कुहलों- **प्राकृतिक रूप से बहने वाली धाराओं का पानी मोड़ने के लिए बनाई गई सतह की नालियों-** की पारंपरिक सिंचाई प्रणाली विकसित की।

स्वतंत्रता के बाद राज्य के सिंचाई व जन-स्वास्थ्य विभाग ने भी कुहलों के जरिए काफी बहाव सिंचाई स्रोत विकसित किए हैं। हाल के वर्षों में इसकी जरूरत के मुताबिक सामुदायिक कुहलों के अधिग्रहण, उनकी नई रूपरेखा बनाने, उनकी देखरेख और प्रबंधन करने का जिम्मा अपने हाथ में लेना शुरू किया है। कोई भी आम सामुदायिक कुहल छः से तीस किसानों की जरूरतें पूरी करता है और लगभग बीस एकड़ क्षेत्र सींचता है। इस प्रणाली में जल स्रोत पर नदी के पत्थरों से खड़ी की गई एक दीवार होती है। किसी धारा के आरपार इसे खड़ा कर दिया जाता है, ताकि इस धारा अथवा खुद का पानी जमा किया जाए और किसी नहर (आम तौर पर कच्ची और आयताकार और ऊपर चौड़े, नीचे पतले चतुर्भुज के आकार की अनुप्रस्थ काट वाली) के जरिए इस बहाव को मोड़कर खेतों तक पहुंचा दिया जाए। आधुनिक मानकों के तहत कुहल के निर्माण को बहुत आसान प्रक्रिया माना जा सकता है, जिसे बनाने में मुख्यतः पत्थर और श्रम ही लगता है। कुहल के साथ मोघा (कच्ची नालियां) जुड़े होते हैं, जिनसे आया पानी पास के सीढ़ीदार खेत सींचता रहता है। यह पानी एक खेत से दूसरे खेत होता हुआ बहता है और इससे जो अतिरिक्त पानी बचता है वह फिर लौटकर उस धारा अथवा खुद में मिल जाता है।

यह खेत से खेत तक होने वाली सिंचाई कुहल के पानी के अंतिम छोर पर पड़ने वाले किसानों को इससे वंचित कर देती थी। जल चक्र की अपर्याप्तता और खराब भू-विकास और भी हालत खराब किए रहता था। किसी भी सिंचाई मौसम के अंत में, जब पानी की जरूरत नहीं होती थी, तब जल धारा पर बनाई गई अस्थायी दीवार ढहा दी जाती थी, ताकि अगली फसल के मौसम में उसका पुनर्निर्माण किया जा सके।

कुहलों के निर्माण और रखरखाव का काम ग्राम समुदाय के ही जिम्मे रहता था और इसे अपने ही एक चुने व्यक्ति के नेतृत्व में करता था, जिसे कोहली (पानी का रखवाला) कहते थे। यह व्यक्ति अपनी शक्ति समुदाय से ग्रहण

करता था और उसके ही प्रतिनिधि के बतौर काम करता था। समुदाय उसके प्राधिकार और उसके फैसलों को मान्यता देता था। किसी एक समुदाय के कुहल में कोहली का पद आनुवांशिक था और आम तौर पर पिता की जिम्मेदारियां बेटे पर आ जाया करती थीं।

सिंचाई के मौसम की शुरूआत में ही कोहली जलस्रोत पर दीवार बनाने के लिए, कुहल की मरम्मत के लिए और समूची व्यवस्था को कामकाजी बनाने के लिए लोगों को संगठित करता। कोहली स्थानीय इंजीनियर की भूमिका निभाता था। बगैर किसी वाजिब कारण के यदि कोई व्यक्ति निर्माण और मरम्मत कार्यों में हिस्सा लेने से इनकार कर देता तो उसे उस मौसम के लिए सिंचाई से वंचित कर दिया जाता।

कुहल से पानी का बंटवारा और उसका प्रबंध भी कोहली का ही कार्य था। तंगी के दिनों में वह यह तय करता कि हर किसान को कितना-कितना पानी मिलना जरूरी है। यदि सिंचाई करने वालों और कोहली के बीच कोई विवाद उठ खड़ा होता, जो प्रायः ही होता था, तो मामला ग्राम पंचायत के सामने लाया जाता था और यदि कोहली दोषी पाया जाता था तो उसे सजा दी जाती थी।

सामुदायिक कुहल हिमाचल प्रदेश के सुदूर इलाकों को सिंचाई उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। एक सामान्य सामुदायिक कुहल से होने वाले लाभों का विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि उससे लगभग बीस प्रतिशत का आर्थिक लाभ हुआ करता है। लेकिन पहले कुहल द्वारा सिंचित क्षेत्र में इधर लगातार कमी हुई है और वर्षों पहले बनी प्रणालियों के चलते उनसे होने वाले लाभों में भी गिरावट आती गई है।

नई प्रवृत्तियाँ

स्वतंत्रता के साथ ही नए आर्थिक अवसरों के चलते हिमाचल प्रदेश के गांवों में काफी बदलाव आए हैं। पंचायती राज संस्थाएं स्थापित हुई हैं और सामुदायिक विकास कार्यक्रम चले है। इनका प्रभाव आम तौर पर सामुदायिक कुहलों पर बुरा ही पड़ा है। सिंचाई करने वाले पुराने लोगों ने अब अपनी जमीनें नई पीढ़ी को सौंप दी हैं, जिसकी मुख्य प्रणाली श्रम को कम मान देती है। काम के एवज में वे अर्थदंड या मजदूरी देने को प्रस्तुत रहते हैं। नई पीढ़ी पारंपरिक खेती के विकल्प के बारे में बढ़-चढ़कर सोचती है। इसके चलते वह कुहलों पर कम निर्भर है और सामाजिक नियंत्रण को अपने लिए कम बाध्यकारी मानती है।

बदले हुए सामाजिक व आर्थिक परिवेश में सामुदायिक कुहलों के प्रबंधन के लिए एक कोहली को केंद्र कर नामांकित सदस्यों की समिति गठित की जाती है। कुहल निर्माण में भागीदारी को लेकर अनिच्छुक सदस्यों को पानी न देने की जगह उन पर अर्थदंड लगाया जाता है। यह अर्थदंड जो पहले भागीदारी न करने वालों पर प्रतिदिन के हिसाब से लगाया जाता था, अब प्रति एकड़ के आधार पर तय किया जाता है। इस प्रकार एकत्रित

"बूंदों की संस्कृति" से साभार

अर्थदंड से कोहली निर्माण कार्य के लिए एवजी मजदूर जुटा लेता है। कोई भी व्यक्ति, जो किसी निर्माण में काम करना चाहता हो, उसे इन इकट्ठा किए गए चंदों में से रोजाना मजदूरी दी जाती है। इस प्रकार यह प्रणाली नकदी विनिमय- माध्यम के चलते अधिकाधिक औपचारिक स्वरूप ग्रहण करती जा रही है। भागीदारी, जो सामुदायिक सिंचाई प्रणालियों का आधार थी, अब समाप्त हो रही है।

पंचायती राज संस्थाओं के आगमन के साथ ही अंचल विकास अधिकारियों ने कुहलों की मरम्मत और देखरेख के लिए तात्कालिक सहायता का प्रावधान बनाया और इसके लिए यह शर्त थी कि पंचायतें इनसे लाभान्वित होने वालों से श्रम समेत विभिन्न चंदों की व्यवस्था करें। मरम्मत के खर्चे आम तौर पर इस सरकारी सहायता से ज्यादा होते है और पंचायतें जरूरी श्रम की व्यवस्था नहीं कर पातीं।

सामुदायिक कुहलों के श्रम में धारा के घटते बहाव का भी कुछ योगदान है, पानी आने के इलाकों से जंगल कट रहे हैं और अधिकाधिक जगहों से जलापूर्ति हटाने की होड़ सी लगी हुई है। नतीजा यह है कि किसी खास कुहल में निवेश और उसके संचालन संबंधी फैसले धारा के ऊपर और नीचे स्थित अन्य कुहलों के ऐसे ही फैसलों से प्रभावित होने लगे हैं।

संसाधनों के प्रबंधन के लिए सरकार का मुंह देखने का रुझान बढ़ता जा रहा है। ऐसे तरीके चिन्हित करने जरूरी हो गए हैं, जो इस प्रवृत्ति को पलट सकें।